

## **Chapter ग्यारह**

### **इन्द्र द्वारा असुरों का संहार**

इस अध्याय में बताया गया है कि महान् मुनि नारद को उन असुरों पर अत्यधिक दया आई जो

देवताओं द्वारा मारे गये थे। अतः उन्होंने देवताओं को इस रक्तपात को बन्द करने के लिए कहा। तब शुक्राचार्य ने अपनी योगशक्ति से सभी असुरों को जीवनदान दिया।

भगवान् का समर्थन होने से देवतागण इन असुरों से नये जोश से पुनः लड़ने लगे। राजा इन्द्र ने बलि पर अपना वज्र चलाया और जब बलि गिर गये तो उनके मित्र जम्भासुर ने इन्द्र पर आक्रमण कर दिया, किन्तु इन्द्र ने अपने वज्र से उसका सिर काट दिया। जब नारद मुनि ने सुना कि जम्भासुर मारा गया है, तो उन्होंने नमुचि, बल तथा पाक को सूचित किया जो उसके सम्बन्धी थे। तब ये तीनों युद्धक्षेत्र में गये और इन्होंने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। इन्द्र ने बल तथा पाक के सिर काट दिये और नमुचि के कंधे पर कुलिश नाम का वज्र-रूपी हथियार छोड़ा। किन्तु यह कुलिश वज्र असफल होकर वापस आ गया जिससे इन्द्र खिन्न हो गया। उस समय आकाश से एक अदृश्य वाणी सुनाई पड़ी वाणी ने घोषणा की, “नमुचि को शुष्क या नम हथियार नहीं मार सकता।” यह वाणी सुनकर इन्द्र सोचने लगा कि नमुचि का संहार कैसे हो? तब उसके मन में झाग का विचार आया जो न तो शुष्क होता है, न नम। इस झाग के हथियार का उपयोग करके वह नमुचि को मारने में सफल रहे। इस प्रकार इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने अनेक असुर मार गिराये। तब ब्रह्मा के आग्रह पर नारद मुनि देवताओं के पास गये और उन्हें मना किया कि अब वे असुरों का वध करना बन्द कर दें। तब सारे देवता अपने-अपने धामों को चले गये। किन्तु युद्ध-स्थल पर जितने असुर जीवित बचे थे वे सब नारद के आदेशानुसार बलि महाराज को अस्ताचल पर्वत पर ले गये। वहाँ पर शुक्राचार्य के कर-स्पर्श से बलि महाराज को फिर से चेतना आ गई और जिन असुरों के सिर तथा शरीर पूरी तरह नष्ट नहीं हुए थे उन सब को शुक्राचार्य ने अपनी योग-शक्ति से पुनः जीवित कर दिया।

श्रीशुक उवाच

अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः

परस्य पुंसः परयानुकम्पया ।

जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्

तांस्तान्नणे चैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथो—तत्पश्चात्; सुराः—सारे देवता; प्रत्युपलब्ध-चेतसः—चेतना आ जाने से पुनः जीवित होकर; परस्य—परम; पुंसः—भगवान् की; परया—परम; अनुकम्पया—कृपा से; जघ्नुः—पीटने लगे; भृशम्—

पुनः पुनः; शक्र—इन्द्र; समीरण—वायु; आदयः—इत्यादि; तान् तान्—उन-उन राक्षसों को; रणे—युद्ध में; यैः—जिनके द्वारा; अभिसंहताः—हराये गये थे; पुरा—पहले।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् भगवान् श्रीहरि की परम कृपा से इन्द्र, वायु इत्यादि सारे देवता जीवित हो गये। इस प्रकार जीवित होकर सारे देवता उन्ही असुरों को बुरी तरह पीटने लगे जिन्होंने पहले उन्हें परास्त किया था।

वैरोचनाय संरब्धो भगवान्याकशासनः ।

उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हा हेति चुक्रुशुः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

वैरोचनाय—बलि महाराज को ( मारने के लिए ); संरब्धः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; पाक-शासनः—इन्द्र ने; उदयच्छत्—हाथ में लिया; यदा—जिस समय; वज्रम्—वज्र; प्रजाः—सारे असुर; हा हा—हाय हाय; इति—इस प्रकार; चुक्रुशुः—चिल्लाने लगे।

जब परमशक्तिशाली इन्द्र क्रुद्ध हो गए और उन्होंने महाराज बलि को मारने के लिए अपने हाथ में वज्र ले लिया तो सारे असुर “हाय हाय” चिल्ला कर शोक करने लगे।

वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् ।

मनस्विनं सुसम्पन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

वज्र-पाणिः—हाथ में सदा वज्र रहता है, जिसके, इन्द्र; तम्—बलि महाराज को; आह—सम्बोधित किया; इदम्—इस तरह; तिरस्कृत्य—प्रताड़ित करके; पुरः-स्थितम्—उसके सामने खड़े होकर; मनस्विनम्—अत्यन्त गम्भीर तथा सहिष्णु; सु-सम्पन्नम्—युद्ध के साज-सामान से युक्त; विचरन्तम्—घूमते हुए; महा-मृधे—विशाल युद्धस्थल में।

गम्भीर, सहिष्णु तथा लड़ने के साज-सामान से भलीभांति युक्त बलि महाराज उस विशाल युद्धस्थल में इन्द्र के सामने घूम रहे थे। सदा हाथ में वज्र लिये रहने वाले इन्द्र ने बलि महाराज को इस प्रकार तिरस्कारपूर्वक ललकारा।

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि ।

जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

नट-वत्—धूर्त या ठग की तरह; मूढ—रे धूर्त; मायाभिः—माया करके; माया-ईशान्—माया को वश में करने वाले देवताओं को; नः—हम सब को; जिगीषसि—विजयी बनना चाहते हो; जित्वा—जीतकर; बालान्—बच्चों को; निबद्ध-अक्षान्—आँखें बाँध कर; नटः—ठग; हरति—ले जाता है; तत्-धनम्—बच्चे का धन।

इन्द्र ने कहा : रे धूर्त! जिस प्रकार ठग बच्चे की आँखों को बाँध कर कभी-कभी उसका धन ले जाता है उसी प्रकार तुम यह जानते हुए कि हम सब ऐसी माया-शक्तियों के स्वामी हैं,

अपनी कोई मायाशक्ति दिखलाकर हमें परास्त करना चाहते हो।

आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सृप्सन्ति ये दिवम् ।  
तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञानपूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आरुरुक्षन्ति—व्यक्ति जो उच्च लोकों को जाना चाहते हैं; मायाभिः—तथाकथित योगशक्ति या विज्ञान के भौतिक विकास द्वारा; उत्सृप्सन्ति—या ऐसे झूठे प्रयासों से मुक्त होना चाहते हैं; ये—जो व्यक्ति; दिवम्—स्वर्गलोक को; तान्—ऐसे धूर्तों तथा लंठों को; दस्यून्—ऐसे चोरों को; विधुनोमि—मैं नीचे गिराता हूँ; अज्ञान्—मूर्ख; पूर्वस्मात्—पिछला; च—भी; पदात्—पद से; अधः—नीचे।

उन मूर्खों तथा धूर्तों को जो माया से या यांत्रिक साधनों से उच्चलोकों तक पहुँचना चाहते हैं या जो उच्चलोकों को भी पार करके वैकुण्ठलोक या मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, मैं उन्हें ब्रह्माण्ड के सबसे निम्न भाग में भिजवाता हूँ।

तात्पर्य : विभिन्न लोगों के लिए निस्सन्देह, भिन्न-भिन्न लोक हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* (१४.१८) में कहा गया है—*ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः*—सतोगुणी पुरुष उच्चतर लोकों को जा सकते हैं। किन्तु जो रजोगुणी तथा तमोगुणी हैं उन्हें उच्चलोकों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता। *दिवम्* शब्द उच्चलोकों का द्योतक है, जो स्वर्गलोक कहलाता है। स्वर्गलोक के राजा इन्द्र को अधिकार है कि यदि कोई बद्धजीव समुचित योग्यता के बिना निम्न लोकों से उच्चलोकों को जाने का प्रयास करे तो वह उसे नीचे धकेल दे। चन्द्रमा तक जाने का आधुनिक प्रयास निम्न लोगों द्वारा कृत्रिम यांत्रिक साधनों से स्वर्गलोक जाने का ही प्रयास है। यह प्रयास सफल नहीं हो सकता। इन्द्र के इस कथन से लगता है कि जो यांत्रिक साधनों द्वारा, जिसे यहाँ पर माया कहा गया है, उच्चलोकों को जाने का प्रयास करता है उसे ब्रह्माण्ड के निम्न भागों में नरकलोक में भेज दिया जाता है। उच्चलोकों में जाने के लिए पर्याप्त सद्गुण चाहिए। तमोगुणी पापी पुरुष तथा मदिरा पान, मांस भक्षण तथा अवैध यौनाचार में लगा व्यक्ति कभी भी यांत्रिक साधनों से उच्चलोकों में प्रवेश नहीं करेगा।

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ।  
शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्यटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वही शक्तिशाली पुरुष; अहम्—मैं ( इन्द्र ); दुर्मायिनः—माया से इतनी जादूगरी करने वाले तुम; ते—तुम्हारा; अद्य—आज; वज्रेण—वज्र से; शत-पर्वणा—सैकड़ों तीक्ष्ण धारों वाला; शिरः—सिर; हरिष्ये—पृथक् कर दूँगा; मन्द-आत्मन्—हे अज्ञानी; घटस्व—इस युद्धस्थल में रहते रहो; ज्ञातिभिः सह—अपने सम्बन्धियों तथा सहायकों सहित।

आज, मैं, वही शक्तिशाली व्यक्ति, हजारों तेज धारों वाले अपने वज्र से तुम्हारे सिर को शरीर से काटकर अलग कर दूँगा। यद्यपि तुम माया द्वारा पर्याप्त चमत्कार दिखा सकते हो, किन्तु तुम्हारा ज्ञान अत्यल्प है। अब तुम अपने परिजनों तथा मित्रों सहित युद्धभूमि में ठहरने की ही चेष्टा दिखा करो।

श्रीबलिरुवाच

सङ्ग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ।

कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; सङ्ग्रामे—युद्धभूमि में; वर्तमानानाम्—यहाँ जो लोग उपस्थित हैं उनका; काल-चोदित—काल के प्रभाव से; कर्मणाम्—लड़ने या अन्य कार्यों में लगे मनुष्यों के लिए; कीर्तिः—यश; जयः—विजय; अजयः—हार; मृत्युः—मृत्यु; सर्वेषाम्—सब की; स्युः—होनी चाहिए; अनुक्रमात्—क्रमशः।

बलि महाराज ने उत्तर में कहा : सभी लोग जो इस युद्धभूमि में उपस्थित हैं निश्चय ही नित्य काल के वश में हैं और वे अपने-अपने नियत कर्मों के अनुसार क्रमशः यश, विजय, हार तथा मृत्यु प्राप्त करेंगे।

तात्पर्य : यदि कोई युद्धभूमि में विजयी होता है, तो वह प्रसिद्ध हो जाता है, किन्तु यदि वह विजयी न होकर हार जाता है, तो वह मर सकता है। जीत या हार तो इस तरह के युद्ध में या जीवन-संघर्ष के युद्धक्षेत्र में सम्भव है ही। सब कुछ प्रकृति के नियमों के अनुसार घटित होता है (प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः)। चूँकि, बिना किसी अपवाद के, हर जीव प्रकृति के गुणों के अधीन है अतएव विजयी या पराजित होना उसके वश में नहीं है अपितु वह प्रकृति के वश में होता है। इसलिए बलि महाराज अत्यन्त विचारवान् थे। वे जानते थे कि युद्ध शाश्वत काल द्वारा नियोजित है और काल के वशीभूत होकर मनुष्य को अपने कर्मों का फल स्वीकार करना होता है। अतएव इन्द्र द्वारा यह धमकी दिये जाने पर भी कि वह बलि महाराज को वज्र से मार डालेगा, बलि महाराज रंचमात्र भी भयभीत नहीं हुए। यही क्षत्रिय धर्म है—युद्धे चाप्यपलायनम् ( भगवद्गीता १८.४३)। क्षत्रिय को सभी परिस्थितियों में, विशेषकर युद्धभूमि में, अत्यन्त सहनशील होना चाहिए। अतः बलि महाराज ने बताया कि यद्यपि स्वर्ग का राजा जैसा व्यक्ति उन्हें धमका रहा है, किन्तु वे मृत्यु से तनिक भी भयभीत

नहीं हैं।

तदिदं कालरशनं जगत्पश्यन्ति सूरयः ।  
न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तत्—अतएव; इदम्—यह सम्पूर्ण भौतिक जगत; काल-रशनम्—काल के कारण गतिमान्; जगत्—आगे बढ़ता ( यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ); पश्यन्ति—देखते हैं; सूरयः—सत्य से अवगत होने के कारण जो बुद्धिमान् हैं; न—नहीं; हृष्यन्ति—हर्षित होते हैं; न—न तो; शोचन्ति—पछताते हैं; तत्र—ऐसे में; यूयम्—तुम सारे देवता; अपण्डिताः—पण्डित नहीं हो ( यह भूलकर कि तुम काल के अधीन कार्य कर रहे हो )।

काल की गतियों को देखकर, जो लोग वास्तविक सत्य से अवगत हैं, वे विभिन्न परिस्थितियों के लिए न तो हर्षित होते हैं, न सोचते हैं। चूँकि तुम लोग अपनी विजय पर हर्षित हो अतः तुम्हें अत्यन्त विद्वान नहीं कहा जा सकता।

तात्पर्य : बलि महाराज जानते थे कि स्वर्ग का राजा इन्द्र अत्यन्त शक्तिशाली है और उनसे तो निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है। फिर भी बलि महाराज ने यह कहकर ललकारा कि इन्द्र बहुत विद्वान पुरुष नहीं है। *भगवद्गीता* ( २.११ ) में कृष्ण ने अर्जुन को यह कहकर फटकारा कि—

*अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।*

*गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥*

“तुम बुद्धिमान्नी की बातें कहते हुए उसके लिए शोक करते हो जो शोक करने योग्य नहीं है। जो लोग बुद्धिमान् हैं, वे न तो जीवित के लिए शोक करते हैं न मरे हुए के लिए।” इस प्रकार जैसे कृष्ण ने अर्जुन को यह कहते हुए फटकारा कि वह पण्डित नहीं है, बलि महाराज ने भी इन्द्र तथा उसके पार्षदों को फटकारा। इस भौतिक जगत में काल के अधीन ही सब घटित होता है। फलस्वरूप ऐसे विद्वान व्यक्ति के लिए जो यह देखता है कि किस तरह घटनाएँ घटती हैं, प्रकृति की लहरों के कारण दुखी या सुखी होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आखिर, जब हम इन लहरों द्वारा बहाकर ले जाये जा रहे हैं, तो हर्षित होने या खिन्न होने से क्या लाभ? जो प्रकृति के नियमों से भलीभाँति अवगत है, वह प्रकृति के कार्यकलापों के कारण, कभी भी न तो हर्षित होता है न खिन्न। *भगवद्गीता* ( २.१४ ) में कृष्ण उपदेश देते हैं कि मनुष्य सहिष्णु बने—*तांस्तितिक्षस्व भारत*। कृष्ण के इस उपदेश का पालन करते हुए मनुष्य को परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण न तो खिन्न होना चाहिए न प्रसन्न। यह भक्त

का लक्षण है। भक्त कृष्णभावनामृत में अपना कर्तव्य पालन करता है और विषम परिस्थिति में अप्रसन्न नहीं रहता। उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि ऐसी परिस्थितियों में कृष्ण अपने भक्त की रक्षा करते हैं। अतएव भक्त भक्ति के अपने नियत कर्तव्य से कभी विचलित नहीं होता। हर्ष तथा विषाद् जैसे भौतिक गुण देवताओं तक में रहते हैं, जो उच्चलोक में अच्छा स्थान ग्रहण किए हुए हैं। अतएव जब कोई व्यक्ति इस भौतिक जगत की तथाकथित अनुकूल तथा प्रतिकूल दशाओं में अविचलित रहे तो उसे ब्रह्मभूत या स्वरूपसिद्ध समझना चाहिए। जैसाकि भगवद्गीता (१८.५४) में कहा गया है— ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति—जो दिव्य पद पर स्थित है, वह तुरन्त ही परब्रह्म का साक्षात्कार करता है और पूरी तरह प्रसन्न हो जाता है। जब मनुष्य भौतिक दशाओं से विचलित नहीं होता तो उसे दिव्य स्तर पर स्थित समझना चाहिए, जो प्रकृति के तीन गुणों के प्रभावों से ऊपर है।

न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ।

गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वयम्—हम; मन्यमानानाम्—मानने वालों का; आत्मानम्—स्वयं; तत्र—विजय या हार में; साधनम्—कारण; गिरः—शब्द; वः—तुम्हारा; साधु-शोच्यानाम्—जिन पर साधु पुरुषों को तरस आता है; गृह्णीमः—स्वीकार करते हैं; मर्म-ताडनाः—हृदय को पीड़ा पहुँचाने वाले।

तुम देवता लोग अपने आपको अपनी ख्याति तथा विजय प्राप्त करने का कारण मानते हो।

तुम लोगों की अज्ञानता के कारण साधु पुरुष तुम्हारे लिए शोक करते हैं। अतएव तुम्हारे वचन मर्मस्पर्शी होते हुए भी हमें स्वीकार्य नहीं हैं।

श्रीशुक उवाच

इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ।

आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराह तं पुनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; आक्षिप्य—प्रताड़ित करके; विभुम्—इन्द्र को; वीरः—बहादुर बलि महाराज; नाराचैः—नाराच नामक बाणों से; वीर-मर्दनः—बड़े-बड़े वीरों को भी दमित करने वाले बलि महाराज; आकर्ण-पूर्णैः—कानों तक खींचकर; अहनत्—आक्रमण किया; आक्षेपैः—प्रताड़ना के शब्दों से; आह—कहा; तम्—उससे; पुनः—फिर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : स्वर्ग के राजा इन्द्र को इस प्रकार कटु वचनों से फटकारने के बाद वीरों को मर्दन करने वाले बलि महाराज ने नाराच बाणों को अपने कान तक खींचा और

उनसे इन्द्र पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने पुनः इन्द्र को कठोर शब्दों से प्रताड़ित किया।

एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ।

नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; निराकृतः—हारकर; देवः—राजा इन्द्र; वैरिणा—अपने शत्रु से; तथ्य-वादिना—सत्य कहने में पटु; न—नहीं; अमृष्यत्—पछताया; तत्—उसकी ( बलि की ); अधिक्षेपम्—प्रताड़ना; तोत्र—अंकुश या दण्ड से; आहतः—मारा जाकर; इव—सदृश; द्विपः—हाथी।

चूँकि महाराज बलि की फटकारें सत्य थीं अतएव इन्द्र तनिक भी खिन्न नहीं हुआ जिस तरह

एक हाथी पीलवान द्वारा अंकुश से पीटा जाने पर भी कभी विचलित नहीं होता।

प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ।

सयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

प्राहरत्—मारा जाकर; कुलिशम्—वज्र दण्ड; तस्मै—उसको ( बलि महाराज को ); अमोघम्—अच्युत; पर-मर्दनः—शत्रु को हराने में पटु, इन्द्र; स-यानः—अपने वायुयान सहित; न्यपतत्—गिर पड़ा; भूमौ—पृथ्वी पर; छिन्न-पक्षः—जिसके पंख काट लिये गये हों; इव—सदृश; अचलः—पर्वत।

जब शत्रुओं को हराने वाले इन्द्र ने अपना अमोघ वज्र बलि महाराज पर उन्हें मारने की इच्छा से चलाया तो सचमुच बलि महाराज अपने वायुयान समेत भूमि पर गिर पड़े मानो कोई पर्वत पंख काटे जाने से गिरा हो।

तात्पर्य : वैदिक वाङ्मय के अनेक वर्णनों में पाया जाता है कि पर्वत भी अपने पंखों से आकाश में उड़ते हैं। जब ऐसे पर्वत मृत हो जाते हैं, तो वे जमीन पर गिर जाते हैं जहाँ वे विशाल मृत शरीरों के रूप में रहते हैं।

सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् ।

अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हृतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सखायम्—अपने घनिष्ठ मित्र को; पतितम्—गिरा हुआ; दृष्ट्वा—देखकर; जम्भः—जम्भ नामक राक्षस; बलि-सखः—बलि महाराज का घनिष्ठ मित्र; सुहृत्—तथा निरन्तर शुभ चाहने वाला; अभ्ययात्—वहाँ पर प्रकट हुआ; सौहृदम्—अत्यन्त दयालु मित्रता; सख्युः—अपने मित्र का; हतस्य—जो चोट खाकर गिर गया था; अपि—यद्यपि; समाचरन्—मैत्रीपूर्ण कार्य निबाहने के लिए।

जब जम्भासुर ने देखा कि उसका मित्र बलि गिर गया है, तो वह उसके शत्रु इन्द्र के समक्ष



प्रकट हुआ मानो मैत्रीपूर्ण आचरण से बलि महाराज की सेवा करने के लिए आया हो।

स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ।

जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सः—जम्भासुर ने; सिंह-वाहः—सिंह द्वारा ले जाया गया; आसाद्य—इन्द्र के समक्ष आकर; गदाम्—अपनी गदा को; उद्यम्य—निकालकर; रंहसा—बलपूर्वक; जत्रौ—गर्दन के निचले भाग पर; अताडयत्—मारा; शक्रम्—इन्द्र को; गजम् च—तथा उसके हाथी को; सु-महा-बलः—उस शक्तिशाली जम्भासुर ने।

अत्यन्त शक्तिशाली जम्भासुर सिंह पर सवार होकर इन्द्र के पास आया और उसने अपनी गदा से उसके कंधे पर बलपूर्वक प्रहार किया। उस ने इन्द्र के हाथी पर भी प्रहार किया।

गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ।

जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गदा-प्रहार-व्यथितः—जम्भासुर की गदा की चोट से पीड़ित; भृशम्—अत्यधिक; विह्वलितः—उद्विग्न; गजः—हाथी; जानुभ्याम्—अपने दोनों घुटनों से; धरणीम्—पृथ्वी को; स्पृष्ट्वा—छूकर; कश्मलम्—अचेत; परमम्—अत्यधिक; ययौ—हो गया।

जम्भासुर की गदा से चोट खाकर इन्द्र का हाथी विचलित और पीड़ित हो गया। उसने भूमि पर घुटने टेक दिये और वह अचेत होकर गिर गया।

ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ।

आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; रथः—रथ; मातलिना—मातलि नामक सारथी द्वारा; हरिभिः—घोड़ों से; दश-शतैः—सौ का दस गुना, एक हजार; वृतः—जुने हुए; आनीतः—लाया जाकर; द्विपम्—हाथी को; उत्सृज्य—छोड़कर; रथम्—रथ में; आरुरुहे—चढ़ गया; विभुः—महान् इन्द्र।

तत्पश्चात् इन्द्र का सारथी मातलि इन्द्र का रथ ले आया जिसे एक हजार घोड़े खींच रहे थे। तब इन्द्र ने अपने हाथी को छोड़ दिया और वह रथ पर चढ़ गया।

तस्य तत्पूजयन्कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः ।

शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

तस्य—मातलि की; तत्—वह सेवा ( इन्द्र के समक्ष रथ को लाना ); पूजयन्—प्रशंसा करते हुए; कर्म—स्वामी की ऐसी सेवा; यन्तुः—सारथी का; दानव-सत्-तमः—असुर श्रेष्ठ, जम्भासुर; शूलेन—त्रिशूल से; च्वलता—अग्नि की लपटें निकालता; तम्—मातलि को; तु—निस्सन्देह; स्मयमानः—मुस्काते हुए; अहनत्—मारा; मृधे—युद्धस्थल में।

मातलि के सेवाभाव की प्रशंसा करते हुए असुरश्रेष्ठ जम्भासुर मुस्कराने लगा। फिर भी उसने

युद्धभूमि में अग्नि के समान जलते हुए अपने त्रिशूल से मातलि पर प्रहार कर दिया।

सेहे रुजं सुदुर्मर्षा सत्त्वमालम्ब्य मातलिः ।

इन्द्रो जम्भस्य सङ्क्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सेहे—सहन कर लिया; रुजम्—पीड़ा को; सु-दुर्मर्षाम्—असह्य; सत्त्वम्—धैर्य; आलम्ब्य—धारण करके; मातलिः—सारथी मातलि ने; इन्द्रः—इन्द्र; जम्भस्य—जम्भासुर का; सङ्क्रुद्धः—उस पर क्रुद्ध होकर; वज्रेण—अपने वज्र से; अपाहरत्—अलग कर दिया; शिरः—सिर को।

यद्यपि मातलि की वेदना असह्य थी, किन्तु उसने बड़े धैर्य से उसे सह लिया। किन्तु इन्द्र जम्भासुर पर अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा। उसने अपने वज्र से उस पर प्रहार किया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ।

नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

जम्भम्—जम्भासुर को; श्रुत्वा—सुनकर; हतम्—मारा गया; तस्य—उसके; ज्ञातयः—मित्र तथा सम्बन्धी; नारदात्—नारद से; ऋषेः—ऋषि से; नमुचिः—नमुचि; च—भी; बलः—बल नामक असुर; पाकः—तथा पाक राक्षस; तत्र—वहाँ; आपेतुः—तुरन्त आ गये; त्वरा-अन्विताः—फुर्ती से।

जब नारद ऋषि ने जम्भासुर के मित्रों तथा सम्बन्धियों को यह जानकारी दी कि जम्भासुर मारा गया है, तो नमुचि, बल तथा पाक नामक तीन असुर बड़ी तेजी से युद्धभूमि में आ गए।

वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु ।

शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वचोभिः—कटु वचनों से; परुषैः—अत्यन्त भेदे तथा कठोर; इन्द्रम्—राजा इन्द्र को; अर्दयन्तः—प्रताड़ित करते; अस्य—इन्द्र के; मर्मसु—हृदय में; शरैः—बाणों से; अवाकिरन्—चारों ओर से ढक दिया; मेघाः—बादल; धाराभिः—वर्षा की झड़ी से; इव—जिस तरह; पर्वतम्—पर्वत को।

इन्द्र को कठोर, मर्मभेदी शब्दों से भला-बुरा कहते हुए इन असुरों ने उस पर बाणों से उसी प्रकार वर्षा की जिस तरह वर्षा की झड़ी किसी महान् पर्वत को धो देती है।

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ।  
तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

हरीन्—घोड़ों को; दश-शतानि—एक हजार; आजौ—युद्धभूमि में; हर्यश्वस्य—इन्द्र के; बलः—बल नामक असुर ने; शरैः—बाणों से; तावद्भिः—इतनों से; अर्दयाम् आस—कठिनाई में डाल दिया; युगपत्—एक साथ; लघु-हस्तवान्—हाथ की सफाई से।

बल नामक असुर ने युद्धभूमि में परिस्थिति को तुरन्त सँभालते हुए इन्द्र के सभी एक हजार घोड़ों को उतने ही बाणों से एकसाथ घायल करके संकट में डाल दिया।

शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ।  
सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

शताभ्याम्—दो सौ बाणों से; मातलिम्—मातलि नामक सारथी को; पाकः—पाक नामक राक्षस ने; रथम्—रथ को; स-अवयवम्—सारे साज-सामान सहित; पृथक्—अलग-अलग; सकृत्—एक ही बार में; सन्धान—धनुष पर बाण चढ़ाकर; मोक्षेण—तथा छोड़कर; तत्—ऐसे कार्य को; अद्भुतम्—अद्भुत; अभूत्—हो गया; रणे—युद्धभूमि में।

एक दूसरे असुर पाक ने अपने धनुष पर दो सौ बाण चढ़ाकर और उन्हें एक ही साथ छोड़कर सारे साज-सामान से भरे रथ पर तथा सारथी मातलि पर आक्रमण किया। युद्धभूमि में यह निस्सन्देह एक अद्भुत कार्य था।

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः ।  
आहत्य व्यनदत्सङ्ख्ये सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

नमुचिः—नमुचि नामक राक्षस ने; पञ्च-दशभिः—पन्द्रह; स्वर्ण-पुङ्खैः—सुनहले पंखों वाले; महा-इषुभिः—अत्यन्त शक्तिशाली बाणों से; आहत्य—भेदकर; व्यनदत्—गर्जना की; सङ्ख्ये—युद्धभूमि में; स-तोयः—जल से भरे हुए; इव—सदृश; तोय-दः—वर्षा करने वाला बादल।

तब एक दूसरे असुर नमुचि ने इन्द्र पर आक्रमण किया और उसे पन्द्रह सुनहरे पंखों वाले अत्यन्त शक्तिशाली बाणों से घायल कर दिया जो जल से भरे बादल के समान गरज रहे थे।

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् ।  
छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सर्वतः—चारों ओर; शर-कूटेन—बाणों की घनी वर्षा से; शक्रम्—इन्द्र को; स-रथ—रथ सहित; सारथिम्—सारथी को; छादयाम् आसुः—ढक दिया; असुराः—सारे असुरों ने; प्रावृट्—वर्षा ऋतु में; सूर्यम्—सूर्य को; इव—सदृश; अम्बु-दाः—बादल।

अन्य असुरों ने अपने बाणों की निरन्तर वर्षा से इन्द्र को उसके रथ तथा सारथी सहित ढक दिया जिस तरह वर्षा ऋतु में बादल सूर्य को ढक लेते हैं।

अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला

विचुकुशुर्देवगणाः सहानुगाः ।

अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता

वणिक्पथा भिन्ननवो यथार्णवे ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अलक्षयन्तः—देख सकने में असमर्थ; तम्—इन्द्र को; अतीव—अत्यधिक बुरी तरह से; विह्वलाः—मोहग्रस्त; विचुकुशुः—पश्चात्ताप करने लगे; देव-गणाः—सारे देवता; सह-अनुगाः—अपने अनुयायियों सहित; अनायकाः—बिना नेता के; शत्रु-बलेन—अपने शत्रुओं की श्रेष्ठ शक्ति द्वारा; निर्जिताः—अत्यधिक सताये गये; वणिक्-पथाः—व्यापारी; भिन्न-नवः—जिसका जहाज टूट गया हो; यथा अर्णवे—जिस तरह समुद्र के बीच में।

देवतागण अपने शत्रुओं द्वारा बुरी तरह से सताये जाने तथा युद्धभूमि में इन्द्र को न देख पाने के कारण अत्यन्त चिन्तित थे। वे बिना नायक या कप्तान के उसी तरह विलाप करने लगे जिस तरह समुद्र के बीच में जहाज ध्वंस होने पर व्यापारी विलाप करते हैं।

तात्पर्य : इस कथन से प्रतीत होता है कि उच्चलोकों में जहाजरानी होती है और व्यापारी व्यवसाय के रूप में नौका चालन करते हैं। कभी-कभी इस लोक की तरह इन व्यापारियों का भी जहाज समुद्र के बीच में ध्वंस हो जाता है। ऐसा लगता है कि उच्चलोकों में भी ऐसी विपदाएँ कभी कभी आती रहती हैं। भगवान् की सृष्टि में होने से उच्चलोक भी शून्य या जीवों से रहित नहीं है। श्रीमद्भागवत से हमें ज्ञात होता है कि हमारी पृथ्वी की भाँति प्रत्येक लोक जीवों से पूर्ण है। यह मानने का कोई कारण नहीं कि अन्य लोकों में कोई जीव नहीं हैं।

ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्

विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ।

बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्

स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; तुराषाट्—इन्द्र का दूसरा नाम; इषु-बद्ध-पञ्जरात्—शर पंजर से; विनिर्गतः—छूटकर; स—सहित; अश्व—घोड़े; रथ—रथ; ध्वज—झंडा; अग्रणीः—तथा सारथी; बभौ—हो गये; दिशः—सारी दिशाएँ; खम्—आकाश को;

पृथिवीम्—पृथ्वी को; च—तथा; रोचयन्—सुहावना बनाते; स्व-तेजसा—अपने तेज से; सूर्यः—सूर्य; इव—सदृश; क्षपा-  
अत्यये—रात्रि बीत जाने पर।

तत्पश्चात् इन्द्र ने बाणों के पिंजर से अपने को छुड़ाया। वह अपने रथ, झंडे, घोड़े तथा सारथी के साथ प्रकट हुआ और आकाश, पृथ्वी तथा सभी दिशाओं में प्रसन्नता फैलाते हुए वह तेजी से ऐसे चमकने लगा मानो रात बीत जाने पर सूर्य तेजी से चमक रहा हो। इन्द्र सब की दृष्टि में तेजवान् तथा सुन्दर लग रहा था।

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ।

उदयच्छद्रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

निरीक्ष्य—देखकर; पृतनाम्—अपने सैनिकों को; देवः—इन्द्र ने; परैः—शत्रुओं द्वारा; अभ्यर्दिताम्—अत्यधिक सताया गया; रणे—युद्धभूमि में; उदयच्छत्—ले लिया; रिपुम्—शत्रुओं को; हन्तुम्—मारने के लिए; वज्रम्—वज्र; वज्र-धरः—वज्रधारण करने वाला; रुषा—अत्यधिक गुस्से से।

जब वज्रधर नाम से विख्यात इन्द्र ने देखा कि उसके सैनिक युद्धभूमि में शत्रुओं द्वारा इस तरह सताये जा रहे हैं, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। तब उसने शत्रुओं को मारने के लिए अपना वज्र उठा लिया।

स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ।

ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह ( इन्द्र ); तेन—उसके द्वारा; एव—निस्सन्देह; अष्ट-धारेण—वज्र द्वारा; शिरसी—दो सिरों को; बल-पाकयोः—बल तथा पाक असुरों के; ज्ञातीनाम् पश्यताम्—उनके सम्बन्धियों तथा सैनिकों के देखते-देखते; राजन्—हे राजा; जहार—( इन्द्र ने ) काट दिया; जनयन्—उत्पन्न करते हुए; भयम्—( उनके बीच ) भय।

हे राजा परीक्षित! राजा इन्द्र ने बल तथा पाक दोनों असुरों के सिरों को उनके सम्बन्धियों तथा अनुयायियों की उपस्थिति में अपने वज्र द्वारा काट दिया। इस तरह उसने युद्धभूमि में अत्यन्त भयावह वातावरण उत्पन्न कर दिया।

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः ।

जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

नमुचिः—नमुचि ने; तत्—उन दो असुरों की; वधम्—हत्या; दृष्ट्वा—देखकर; शोक-अमर्ष—शोक तथा दुख; रुषा-अन्वितः—इससे अत्यन्त क्रुद्ध; जिघांसुः—मारना चाहा; इन्द्रम्—इन्द्र को; नृ-पते—हे महाराज परीक्षित; चकार—किया; परम—महान्; उद्यमम्—प्रयास ।

हे राजा! जब असुर नमुचि ने बल तथा पाक दोनों असुरों को मारे जाते देखा तो वह दुख तथा शोक से भर गया। अतएव उसने क्रुद्ध होकर इन्द्र को मारने का महान् प्रयास किया।

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् ।  
प्रगृह्णाभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ।  
प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अश्मसार-मयम्—इस्यात का; शूलम्—भाला; घण्टा-वत्—घण्टियों से बँधा; हेम-भूषणम्—सोने के आभूषणों से विभूषित; प्रगृह्ण—हाथ में लेकर; अभ्यद्रवत्—बलपूर्वक गया; क्रुद्धः—क्रुद्ध मुद्रा में; हतः असि इति—अब तुम मारे गए; वितर्जयन्—गर्जना करते हुए; प्राहिणोत्—प्रहार किया; देव-राजाय—राजा इन्द्र को; निनदन्—गर्जना करते; मृग-राट्—सिंह; इव—समान ।

सिंह गर्जना करते हुए नमुचि ने क्रोध में आकर इस्यात का एक भाला उठाया जिसमें घण्टियाँ बँधी थीं और जो सोने के आभूषणों से सज्जित था। वह उच्चस्वर से चिल्लाया “अब तुम मारे गये।” इस प्रकार इन्द्र को मारने के लिए उसके समक्ष जाकर नमुचि ने अपना हथियार चलाया।

तदापतद्गगनतले महाजवं  
विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ।  
तमाहननृप कुलिशेन कन्धरे  
रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरो हरन् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; अपतत्—उल्का की तरह गिर पड़ा; गगन-तले—आकाश के नीचे अर्थात् भूमि पर; महा-जवम्—अत्यन्त शक्तिशाली; विचिच्छिदे—खंड-खंड कर डाला; हरिः—इन्द्र ने; इषुभिः—अपने बाणों से; सहस्रधा—हजारों खण्डों में; तम्—उस नमुचि को; आहनत्—प्रहार किया; नृप—हे राजा; कुलिशेन—अपने वज्र से; कन्धरे—कन्धे पर; रुषा-अन्वितः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; त्रिदश-पतिः—देवताओं का राजा इन्द्र; शिरः—सिर; हरन्—काटने के लिए ।

हे राजा! जब स्वर्ग के राजा इन्द्र ने इस अत्यन्त शक्तिशाली भाले को ज्वलित उल्का की भाँति भूमि की ओर गिरते देखा तो उसने तुरन्त ही उसे अपने बाणों से खण्ड-खण्ड कर दिया। फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने नमुचि के कन्धे पर अपने वज्र से प्रहार किया जिससे उसका सिर कट सके।

न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो  
 बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ।  
 तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्  
 तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तस्य—उसका ( नमुचि का ); हि—निस्सन्देह; त्वचम् अपि—चमड़ी भी; वज्रः—वज्र; ऊर्जितः—अत्यन्त शक्तिशाली; बिभेद—घुस सका; यः—जो हथियार; सुर-पतिना—देवताओं के राजा द्वारा; ओजसा—अत्यन्त वेग के साथ; ईरितः—छोड़ा गया था; तत्—अतएव; अद्भुतम् परम्—अत्यधिक अद्भुत; अतिवीर्य-वृत्र-भित्—इतना शक्तिशाली था कि अत्यन्त बलवान् वृत्रासुर के भी शरीर को भेद सकता था; तिरस्कृतः—जिसे अब पीछे धकेल दिया गया था; नमुचि-शिरोधर-त्वचा—नमुचि की गर्दन की खाल से।

यद्यपि इन्द्र ने नमुचि पर अपना वज्र बड़े ही वेग से चलाया था, किन्तु वह उसकी खाल को भेद तक नहीं पाया। यह बड़ी विचित्र बात है कि जिस सुप्रसिद्ध वज्र ने वृत्रासुर के शरीर को भेद डाला था वह नमुचि की गर्दन की खाल को रंचमात्र भी क्षति नहीं पहुँचा पाया।

तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ।  
 किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतएव; इन्द्रः—स्वर्ग के राजा; अबिभेत्—बहुत डर गया; शत्रोः—शत्रु ( नमुचि ) से; वज्रः—वज्र; प्रतिहतः—मारकर लौटने में असमर्थ था; यतः—क्योंकि; किम् इदम्—यह क्या है; दैव-योगेन—दैवी शक्तिसे; भूतम्—हो गया है; लोक-विमोहनम्—सामान्य लोगों के लिए इतना आश्चर्यजनक।

जब इन्द्र ने वज्र को शत्रु से वापस आते देखा तो वह अत्यन्त भयभीत हो गया। वह आश्चर्य करने लगा कि कहीं किसी ऊँची दैवी शक्ति से तो यह सब कुछ नहीं हुआ।

तात्पर्य : इन्द्र का वज्र अमोघ है; अतएव जब उसने देखा कि वह नमुचि को हानि पहुँचाये बिना लौट आया है, तो वह निश्चित रूप से अत्यधिक भयभीत हो उठा।

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ।  
 कृतो निविशतां भारैः पतत्तैः पततां भुवि ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

येन—इसी वज्र से; मे—मेरे द्वारा; पूर्वम्—पहले; अद्रीणाम्—पर्वतों का; पक्ष-च्छेदः—पंखों का काटा जाना; प्रजा-अत्यये—जब जनता का वध होता था; कृतः—किया गया था; निविशताम्—प्रवेश किये गये पर्वतों को; भारैः—अत्यधिक बोझ से; पतत्तैः—पंखों से; पतताम्—गिरते हुए; भुवि—जमीन पर।

इन्द्र ने सोचा: पूर्वकाल में जब अनेक पर्वत अपने पंखों के द्वारा आकाश में उड़ते हुए भूमि पर गिरते थे और लोगों को मार डालते थे तो मैं अपने इसी वज्र से उनके पंख काट लेता था।

तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ।

अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; सार-मयम्—अत्यन्त शक्तिशाली; त्वाष्ट्रम्—त्वाष्ट्रा द्वारा सम्पन्न; वृत्रः—वृत्रासुर; येन—जिससे; विपाटितः—मारा गया; अन्ये—अन्य; च—भी; अपि—निस्सन्देह; बल-उपेताः—अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्ति; सर्व—सभी प्रकार के; अस्त्रैः—हथियारों से; अक्षत—बिना किसी चोट लगे; त्वचः—उनकी खाल।

यद्यपि वृत्रासुर त्वाष्ट्रा द्वारा की गई तपस्या का सार-समाहार था, तो भी ( इन्द्र के ) वज्र ने उसका काम तमाम कर दिया था। निस्सन्देह, वही नहीं, अपितु ऐसे अनेक अग्रणी वीर भी जिनकी खाल को अन्य हथियार तनिक भी क्षति नहीं पहुँचा सके थे इसी वज्र द्वारा मारे गए।

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ।

नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सः अयम्—अतएव, यह वज्र; प्रतिहतः—लौट आया; वज्रः—वज्र; मया—मेरे द्वारा; मुक्तः—छोड़ा गया; असुरे—असुर को; अल्पके—तुच्छ; न—नहीं; अहम्—मैं; तत्—उसे; आददे—पकड़े हुए हूँ; दण्डम्—डंडे की तरह; ब्रह्म-तेजः—ब्रह्मास्त्र के समान शक्तिशाली; अपि—यद्यपि; अकारणम्—अब यह व्यर्थ हो चुका है।

किन्तु, अब वही वज्र एक तुच्छ असुर पर छोड़े जाने पर भी प्रभावहीन हो गया है। अतएव ब्रह्मास्त्र जैसा होने पर भी यह मेरे लिए अब एक सामान्य डंडे की तरह व्यर्थ हो गया है। इसलिए अब मैं इसे धारण नहीं करूँगा।

इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी ।

नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; शक्रम्—इन्द्र को; विषीदन्तम्—शोक करते; आह—कहा; वाक्—वाणी; अशरीरिणी—देहरहित या आकाश से; न—नहीं; अयम्—यह; शुष्कैः—किसी सूखी वस्तु से; अथो—भी; न—न तो; नार्द्रैः—किसी गीली वस्तु से; वधम्—संहार; अर्हति—के योग्य है; दानवः—यह दानव ( नमुचि )।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब दुःखी इन्द्र इस तरह विषाद कर रहा था, तो एक अशुभ देहरहित वाणी ने आकाश से कहा : यह असुर नमुचि किसी शुष्क या गीली वस्तु से विनष्ट नहीं किया जा सकता।

मयास्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः ।



अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन्निपोः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

मया—मेरे द्वारा; अस्मै—उसको; यत्—क्योंकि; वरः—वरदान; दत्तः—दिया गया है; मृत्युः—मृत्यु; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; आर्द्र—या तो गीले; शुष्कयोः—या किसी सूखे माध्यम से; अतः—अतएव; अन्यः—अन्य कुछ, दूसरा; चिन्तनीयः—सोचना होगा; ते—तुम्हारे द्वारा; उपायः—उपाय; मघवन्—हे इन्द्र; रिपोः—अपने शत्रु का।

आकाशवाणी ने यह भी कहा “हे इन्द्र! चूँकि मैंने इस असुर को वर दे रखा है कि वह कभी किसी सूखे या गीले हथियार से नहीं मारा जायेगा, अतएव उसे मारने के लिए कोई अन्य उपाय सोचो।”

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ।

ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; दैवीम्—दैवी; गिरम्—वाणी को; आकर्ण्य—सुनकर; मघवान्—इन्द्र ने; सु-समाहितः—मनोयोग से; ध्यायन्—ध्यान करके; फेनम्—झाग को; अथ—तत्पश्चात्; अपश्यत्—देखा; उपायम्—साधन; उभय-आत्मकम्—एकसाथ शुष्क तथा गीला।

इस अशुभ वाणी को सुनकर इन्द्र बड़े मनोयोग से ध्यान करने लगा कि इस असुर को किस तरह मारा जाये। तब उसे यह सूझा कि झाग ही ऐसा साधन है, जो न तो गीली होती है, न शुष्क।

न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः ।

तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

न—न तो; शुष्केण—शुष्क साधन से; न—न तो; च—भी; आर्द्रेण—गीले हथियार से; जहार—उसने काट लिया; नमुचेः—नमुचि का; शिरः—सिर; तम्—उसको ( इन्द्र को ); तुष्टुवुः—सन्तुष्ट किया; मुनि-गणाः—सारे मुनियों ने; माल्यैः—फूलों की मालाओं से; च—भी; अवाकिरन्—ढक दिया; विभुम्—उस महापुरुष को।

इस तरह स्वर्ग के राजा इन्द्र ने अपनी झाग के हथियार से नमुचि का सिर काट दिया। यह झाग न तो शुष्क थी, न आर्द्र। तब सारे मुनियों ने उस महापुरुष इन्द्र पर फूलों की वर्षा की तथा माल्यार्पण द्वारा उसे लगभग ढक दिया और सन्तुष्ट कर लिया।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रुति-मन्त्रों का कहना है—अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोऽदारयत्—इन्द्र ने नमुचि को जल की झाग से मार डाला जो न तो सूखी होती है न गीली।

गन्धर्वमुख्यौ जगत्ुर्विश्वावसुपरावसू ।

देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

गन्धर्व-मुख्यौ—गन्धर्वों के दो प्रधान; जगत्:—सुन्दर गीत गाने लगे; विश्वावसु—विश्वावसु; परावसू—परावसु नामक; देव-दुन्दुभयः—देवताओं द्वारा बजाई गई दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजाया; नर्तक्यः—नर्तकियाँ, जिन्हें अप्सरा कहा जाता है; ननृतुः—नाचने लगीं; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नता से।

विश्वावसु तथा परावसु नामक दो गन्धर्व प्रमुखों ने अतीव प्रसन्नता में गीत गाये। देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाई और अप्सराओं ने हर्षित होकर नृत्य किया।

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निरुणादयः ।

सूदयामासुरसुरान्मृगान्केसरिणो यथा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्यों ने; अपि—भी; एवम्—इस प्रकार; प्रतिद्वन्द्वान्—विपक्षियों को; वायु—वायुदेव; अग्नि—अग्निदेव; वरुण-आदयः—वरुण देव तथा अन्य; सूदयाम् आसुः—तेजी से मारने लगे; असुरान्—सारे असुरों को; मृगान्—हिरनों को; केसरिणः—सिंह; यथा—जिस तरह।

वायु, अग्नि, वरुण इत्यादि देवता अपने विरोधी असुरों को उसी तरह मारने लगे जिस तरह जंगल में हिरनों को सिंह मारते हैं।

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ।

वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसङ्क्षयम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मणा—ब्रह्माजी द्वारा; प्रेषितः—भेजा गया; देवान्—देवताओं के; देव-ऋषिः—स्वर्ग के महान् ऋषि; नारदः—नारद मुनि ने; नृप—हे राजा; वारयाम् आस—मना किया; विबुधान्—सारे देवताओं को; दृष्ट्वा—देखकर; दानव-सङ्क्षयम्—असुरों का पूर्ण विनाश।

हे राजा! जब ब्रह्मा ने देखा कि दानवों का पूर्ण संहार तुरन्त होने वाला है, तो उन्होंने नारद द्वारा सन्देश भेजा जो युद्ध रुकवाने के लिए देवताओं के समक्ष गये।

श्रीनारद उवाच

भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ।

श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—नारद मुनि ने देवताओं से प्रार्थना की; भवद्भिः—आप लोगों के द्वारा; अमृतम्—अमृत; प्राप्तम्—प्राप्त किया जा चुका है; नारायण—नारायण की; भुज-आश्रयैः—भुजाओं के द्वारा सुरक्षित; श्रिया—लक्ष्मी द्वारा; समेधिताः—उन्नति की है; सर्वे—आप सब; उपारमत—अब रुक जाओ; विग्रहात्—इस लड़ाई से।

महामुनि नारद ने कहा : तुम सारे देवता भगवान् नारायण की भुजाओं द्वारा सुरक्षित हो और उनकी कृपा से तुम सबको अमृत प्राप्त हुआ है। लक्ष्मीजी की कृपा से तुम हर तरह से गौरान्वित

हुए हो; अतएव अब यह लड़ाई बन्द कर दो।

श्रीशुक उवाच

संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः ।

उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; संयम्य—रोककर; मन्यु—क्रोध का; संरम्भम्—वृद्धि, उभाड़; मानयन्तः—स्वीकार करते हुए; मुनेः वचः—नारद मुनि के शब्द; उपगीयमान—प्रशंसित होकर; अनुचरैः—अनुयायियों द्वारा; ययुः—लौट गये; सर्वे—सारे देवता; त्रिविष्टपम्—स्वर्ग लोक को।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : नारद मुनि के वचनों को मानकर देवताओं ने अपना क्रोध त्याग दिया और लड़ाई बन्द कर दी। वे अपने अनुयायियों द्वारा प्रशंसित होकर स्वर्गलोक को लौट गये।

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते ।

बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

ये—जो थोड़े से असुर; अवशिष्टाः—बचे थे; रणे—युद्ध में; तस्मिन्—उस; नारद-अनुमतेन—नारद की आज्ञा से; ते—वे सभी; बलिम्—महाराज बलि को; विपन्नम्—संकटग्रस्त; आदाय—लेकर; अस्तम्—अस्त नामक; गिरिम्—पर्वत पर; उपागमन्—चले गये।

युद्धक्षेत्र में जितने भी असुर बचे थे, वे सब नारद मुनि के आदेशानुसार बलि महाराज को जिनकी अवस्था अत्यन्त गम्भीर थी, अस्तगिरि ले गये।

तत्राविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् ।

उशाना जीवयामास संजीवन्या स्वविद्यया ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस पर्वत पर; अविनष्ट-अवयवान्—बचे हुए अंगों वाले मारे गए असुरों को; विद्यमान-शिरोधरान्—जिनके सिर उनके शरीरों में अभी तक लगे थे; उशानाः—शुक्राचार्य; जीवयाम् आस—जीवित कर दिया; संजीवन्या—सञ्जीवनी मंत्र द्वारा; स्व-विद्यया—अपनी विद्या से।

उस पर्वत पर शुक्राचार्य ने उन सारे मृत असुर सैनिकों को जिनके सिर, धड़ तथा हाथ- पाँव कटे नहीं थे जीवित कर दिया। उन्होंने अपने सञ्जीवनी मंत्र के द्वारा यह सब किया।

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ।

पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥

## शब्दार्थ

बलि:—महाराज बलि ने; च—भी; उशनसा—शुक्राचार्य द्वारा; स्पृष्टः—स्पर्श से; प्रत्यापन्न—पुनः जीवित किया गया; इन्द्रिय-स्मृतिः—इन्द्रियों के कार्यों तथा स्मृति की अनुभूति; पराजितः—हरा दिया गया; अपि—यद्यपि; न अखिद्यत्—शोक नहीं किया; लोक-तत्त्व-विचक्षणः—सांसारिक कार्यों में अत्यन्त अनुभवी होने के कारण।

बलि महाराज सांसारिक कार्यों में अत्यन्त अनुभवी थे। जब शुक्राचार्य की कृपा से उन्हें होश आया और उनकी स्मृति लौट आई तो जो कुछ हो चुका था उसे वे समझ गये। इसलिए पराजित होने पर भी उन्हें शोक नहीं हुआ।

तात्पर्य : यह महत्त्वपूर्ण बात है कि बलि महाराज को यहाँ पर अत्यन्त अनुभवी कहा गया है। यद्यपि वे हार गये थे, तथापि उन्हें कोई खेद न था क्योंकि वे जानते थे कि भगवान् की अनुमति के बिना कुछ भी नहीं घटित हो सकता। भक्त होने के कारण उन्होंने बिना संताप के अपनी पराजय स्वीकार की। जैसाकि भगवद्गीता (२.४७) में भगवान् ने कहा है—*कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्—*कृष्णभावनाभावित हर व्यक्ति को हार-जीत की परवाह न करके अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। मनुष्य को कृष्ण या उनके प्रतिनिधि गुरु द्वारा आदेशित अपना कर्तव्य करना चाहिए। *आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा—*उत्तम भक्ति में मनुष्य सदा कृष्ण की इच्छा तथा आदेशों का पालन करता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत “इन्द्र द्वारा असुरों का संहार” नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।